सुंदरघाट- नाम से भी ज्यादा सुंदर भूप्रदेश! सुदूर फैले हुए हरे, घने बियाबान ने पहाडों को पनाह दे रखी है। या फिर कह सकते हैं कि जंगल के हरे भरे संमोहन के नशे की चादर ओढ कर ये पहाड वहीं ठिठक गए हैं - युगों युगों से! जनम - जनम की प्रियतमा को सजते - सँवरते देख कर उसकी चिरपरिचित, फिर भी नित्यनूतन गंध से जिस प्रकार हर दिन प्रेमी का शरीर रोमांचित हो ही जाता है - उसी प्रकार जंगल की हरी, घनी गंध यहाँ की आबोहवा में घुल गई है जो हवा के झोंकों पर लहराते हुए अरण्यवासियों की साँसों मे बस गई है। बरसात के मौसम में पहाडों में फूट पडने वाले निर्मल झरनों की ध्वनि, निर्बाध रूप से सीधे बर्डीपाडा तक अनुगूँजित होती रहती है।

वैसे बर्डीपाडा एक छोटी सी बस्ती है, पर याहामौलसिरी माता के सिद्ध देवस्थान के कारण उसका सम्मान बहुत ज्यादा बढ गया है। केवल सुंदरघाट से ही नहीं, अरण्यवासी कई कोस की दूरी से भी माता के दर्शन करने यहाँ आते हैं। 'याहा' शब्द का अर्थ है 'माता'! यहाँ के लोगों की भाषा में मिठास होती है- करौंदी की, जामुन की, शहद की मिठास घुली रहती है उनकी बोली में! याहामौलसिरी देवी के बारे में यह जनश्रुति है कि पुराण - काल में इस देवी माँ ने राजापंत की सहायता से पूरे सुंदरघाट की रक्षा की थी, उसे डायन मक्खियों के आक्रमण से बचाया था। पहले भी तो डायन मक्खियाँ पाई जाती थीं जंगल में, पर बहुत कम मात्रा में! उस वक्त वे इतनी आक्रमक भी नहीं थीं। पर जब से देश-विदेश से तस्कर जंगल में घुस कर गिंडी पंछियों के अंडे चुराने लगे, तब उनका पीछा करते हुए डायन मक्खियों के झुंड जंगल में दाखिल हो गए। देखते ही देखते उनकी तादाद बेशुमार बढती गई। उन्होंने बिल बना लिए। राह चलते अरण्यवासियों को वे डंक मारने लगीं। जिस इन्सान को डस लेती थी, वह तुरंत छींकने लगता था। पाडे तक पहुँचते - पहुँचते उसका शरीर पसीने में भीग जाता था - फिर तेज बुखार चढ जाता था जो कभी उतरता ही नहीं था। साथ में खाँसी के दौरे भी पडते थे- हालत बदतर हो जाती थी। काढे पीने से भी कोई लाभ नहीं होता था। पंद्रह दिनों में ही हट्टाकट्टा अरण्यवासी परलोक सिधार जाता था। मामूली सी सर्दी - खाँसी से किसी तंदुरुस्त अरण्यवासी का यूँ जान गँवा बैठना किसी की सोच के परे वाली बात थी। लोग झुग्गियों से बाहर निकलने से कतराने लगे। पूरी बस्ती सुनसान हो जाती थी।

जब किसी ने मिन्नतें कर के अरण्य के मुखिया तक यह बात पहुँचाई तब उसने याहामौलसिरी माता को आमंत्रित किया। वह तुरंत पहुँच गई, ठीक समय पर। आते ही उसने अपना चमत्कार दिखाना शुरू किया। वह पल भर में ही समझ गई की यह आफत गिंडी पंछियों के पीछे - पीछे ही यहाँ आ धमकी है। उसने अंडों की बिक्री पर रोक लगा दी - अंडों का भाव शून्य पर ले आई। मूल्य ही नहीं, तो भीड नहीं। भीड नहीं तो सर्दी नहीं। एक अलग सा अंदाज था उसका! अरण्य - जीवन की परिभाषा को वह फिर से यथास्थान ले आई। संतुलन के सूत्र को कार्यान्वित करते हुए उसने दर्शाया कि उन्नति कभी सीधी रेखा में नहीं चलती, वह तो चक्राकार होती है! बाद में राजापंत के साथ विवाह करके वह सुंदरघाट में ही निवास करने लगी। इसीलिए अरण्यवासियों ने उसे माँ का दर्जा दिया है। हर माघी पूनम की

तिथि पर वे आक के फूलों से माता की कोंछ भरते हैं। आज भी बर्डीपाडा में नाखून से खोदा हुआ उसका नक्काशीदार मंदिर देखा जा सकता है।

इसी बर्डीपाडा में है ढबू का घर! ढबू.... अकल से तेज, पर जनम से ही थोडी गूँगी थी। बात करते समय हकलाती थी। जिस समय उसका जनम हुआ, तब बुनाई के दिन थे। ढबू का सारा परिवार बाँस की टोकरियाँ, झाबा आदि बुनने का काम करता था। उस साल उन्हें टट्टर की बारह गाडियों का काम मिला था। परिवार के सभी लोग कडी मेहनत कर के बाँस की फट्टियों के पल्ले छीलने के काम में जुटे थे। ढबू की माँ भी इसी काम में लगी थी। उसे तो पता भी नहीं चला कि कब उसकी छाती का दूध सूख गया! बाद में भी तीन-चार बार बारह - बारह गाडियों का काम मिला। पर एक दिन ढबू के बाप से कुछ गलती हो गई - हथियार का आघात कील पर होने के बजाय हाथ पर हो गया और उसको अपने दाहिने हाथ का अँगूठा खोना पडा। उसके तो कोई गुरु भी नहीं थे, फिर भी अँगूठा सदा के लिए खोना पडा। इन्हीं हालातों में ढबू छः साल की हो गई।

उस दिन ढबू के घर के सामने बुजुर्ग महिलाओं का जमावडा दिखाई दे रहा था। पानी गर्म हो रहा था। बकरी बच्चा जनने वाली थी। ढबू की माँ बकरी के पेट पर लौंग का तेल मल रही थी। ढबू को भी बहुत उत्सुकता हो रही थी। झुग्गी को चीरने वाली चीख के साथ आखिर बकरी को छुटकारा मिल गया। नन्हे से, सफेद मेमने को देख कर ढबू की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। वह झुग्गी से बाहर निकल कर दौड पडी - अपनी सहेली छबू को खुशखबरी सुनाने!

आँगन में बैठी बुजुर्ग औरतों के माथे पर शिकन पड गई - बकरा पैदा हो गया था!

.....

हवा के झोंकों पर लहराते हुए ढबू पाडे से निकल कर चढाव के रास्ते से, दूसरी तरफ वाले सांजूबाबा के खेत में पहुँच गई। छबू की माँ चटनी बनाने के लिए चीटियाँ पीस रही थी। छबू अपनी नन्ही सी मुट्ठियों में चीटियाँ इकट्ठा करके माँ का हाथ बटा रही थी।

टीले के माथे पर पहुँचते ही ढबू ने जोरसे पुकार लगाई -

“बू.... बू ...”

“क्या हुआ?”

“बू.... चल....” ढबू एक साँस में इतना ही बोल पाती थी।

“अभी आई” कहते हुए छबू तुरंत ढबू के पास, टीले के माथे पर पहुँची। ढबू ने बताया - “गोरा गोरा मे... मे... मेमना हुआ! सु... सु...सुनहले बाल हैं!”

“अच्छा? चल, चल, दिखा तो मुझे!”

ढबू और छबू पाडे की ओर दौड पडीं।

Originally written in Marathi by Prajakta Gavhane ©

Translated in Hindi by Prof. Dr. Vidya Sahasrabudhe

Koronyakand : ab Hindi me (ISBN : 1638069247)

Book is available to buy

Paperback on **Amazon.in**: https://www.amazon.in/dp/1638069247?&tag=notionpcom-21

eBook on **Amazon kindle**: https://www.amazon.in/dp/B08W3FFTKB

www.prajaktagavhane.com